12

भ्वादिप्रकरण में - भू धातु के लट् लकार में रूपसिद्धि-१

पाणिनी मुनि ने अष्टाध्यायी नामक ग्रन्थ लिखा। वहाँ लाघव सम्पादन के लिए धातुपाठ, गणपाठ, नामलिङ्गानुशासन इत्यादि की भी रचना की। धातुपाठ में पठित शब्द धातुएँ कहलाती हैं। उसी प्रकार सूत्र है - भूवादयो धातवः। धातु का अर्थ फल और व्यापार है। उसका आगे विस्तार से वर्णन करेगें। धातु से परे तिङ् और कृत् दो प्रकार के प्रत्ययों का विधान किया जाता है। वहाँ धातु से तिङ् प्रत्यय के विधान से तिङन्त पद निष्पादित होता है। उस प्रकार ही यह तिङन्तप्रकरण प्रकृत में है।

धातु और तिङ् के मध्य में विधीयमान प्रत्यय विकरण कहलाता है। धातुओं के दश विकरण हैं। यथा - शप्, शब्लुक्, शप्श्लु, श्यन्, श, श्नम्, उ, श्ना, शप्। अन्य भी विकरण हैं - स्य तास् च्लि इत्यादि। फिर भी गण के अनुरूप विभाजन का कारण शपादि दश विकरण ही हैं। जिस धातु से शप् विकरण विधान किया जाता है वह धातु प्रथमगण में पाणिनी के द्वारा स्थापित की गई है। उस प्रथमगण की प्रथम धातु तो भू है। अतः भू आदि में है, जिस गणसमूह के वह गण भ्वादिगण है। इस प्रकार जिन धातुओं से शब्लुक् विकरण है, वे धातुएँ द्वितीयगण में स्थापित की गई हैं। उस गण की प्रथम धातु अद् धातु है। अतः अद् आदि में है, जिस गण के वह अदादिगण होता है। इस प्रकार धातुओं के विकरण के अनुसार दश गण हैं। अतएव बहुत स्थानों पर जब धातु का उल्लेख किया जाता है, तब वह किस गण की है यह लिखा जाता है। यथा- भू (भ्वादि, प.प.) - अर्थात् भू धातु भ्वादिगणीय और परस्मैपदी। विकरण ज्ञान के बिना धातु के लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् इन लकारों में रूप करने में समर्थ नहीं है। अन्य लकारों में विकरण का प्रभाव नहीं है। अतः गणज्ञान के बिना ही उनमें रूप करने में समर्थ है।

इस पाठ में और इसके बाद में नौ पाठों में भ्वादिगणीय धातुओं के ही रूप आलोचित किए गए हैं। भ्वादिगण के प्रायः सभी सूत्र अन्य गणों में धातुओं के रूप सिद्ध करने में अपेक्षित हैं। अतः भ्वादिगण का सम्यग् ज्ञान निश्चय ही अर्जन करना चाहिए।

टिप्पणियाँ

भू धातु से लट् लकार में सभी रूप इसलिए ही अतिविस्तार किए जा रहे है। अत: दो पाठों को एकत्रित करके यहाँ भू धातु के लट् में रूप रखे गए हैं। उसके बाद तीन पाठों में भू धातु के ही अन्य लकारों में रूप रखे गए हैं। इस प्रकार इस प्रकरण के उपयोगी कुछ सूत्र इस पाठ के अंत में दिए गए हैं।

इस प्रकार पांचवें पाठ के बाद भ्वादि प्रकरण के अवशिष्ट मुख्य सूत्र दिए गए हैं।

भू धातु से भवति यह रूप सिद्ध करने के लिए बहुत सूत्रों की आवश्यकता हैं। अत: भवति यह रूप एक स्थान पर प्राप्त नहीं होता है। वह बहुत सूत्रों में व्याप्त है। अत: छात्र के द्वारा वह एकत्र करना चाहिए।

उद्देश्य

इस पाठ को पढकर आप -

- तिङन्तप्रकरण के सूत्र जानेगें;
- धातुरूप सिद्ध करने में समर्थ होगें;
- सूत्रों की व्याख्या करना जानेगें;
- सभी लकारों के अर्थ और रूप जानेगें;
- संस्कृत व्याकरण में कालभेद को जानेगें;
- परस्मैपद और आत्मनेपद क्या है यह जानेगें;
- प्रथम, मध्यम और उत्तम पुरुष को जानेगें;
- सार्वधातुक और आर्धधातुक क्या है यह जानेगें;
- णोपदेश और षोपदेश धातु क्या है यह जानेगें।

भूधातु के लट् लकार में रूप

12.1 लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः॥ (३.४.६९)

सूत्रार्थ - लकार सकर्मक धातुओं से कर्म और कर्ता में हो। अकर्मक धातुओं से भाव और कर्ता में हो।

सूत्रावतरण - सकर्मक धातुओं से कर्म और कर्ता में लकार विधान के लिए, अकर्मक धातुओं से भाव और कर्ता में लकार विधान के लिए यह सूत्र रचा गया है।

सूत्रव्याख्या - यह विधिसूत्र है। इस सूत्र में छः पद हैं। 'लः कर्मणि च भावे च अकर्मकेभ्यः' यह सूत्रगत पदों का विच्छेद है। लः यह प्रथमाबहुवचनान्त पद है। कर्मणि यह सप्तम्यन्त पद है। च यह अव्ययपद है। भावे यह सप्तम्यन्त पद है। च यह अव्यय पद है। अकर्मकेभ्यः यह पञ्चम्यन्त पद है। यहाँ धातोः यह पञ्चम्यन्त पद अधिकृत है। इस सूत्र में दो वाक्य है। दोनों वाक्यों में चकार से कर्तरि कृत् इस सूत्र से कर्तरि यह सप्तम्यन्त पद लिया गया है।

प्रथम वाक्य - धातोः लः कर्मणि कर्तरि च यह। अकर्मक धातु से कर्म में लकारविधान सम्भव नहीं है। अतः यह सकर्मक धातु विषयक है। उससे लः अर्थात् लकार सकर्मक धातुओं से कर्म और कर्ता में होते हैं,यह प्रथमवाक्य का अर्थ है।

द्वितीय वाक्य - धातोः भावे कर्तरि च अकर्मकेभ्यः यह। धातोः इसका विशेषण अनुरोध से बहुवचनान्त होने से विपरिणाम किया जाता है। अतः अर्थ होता है - अकर्मक धातुओं से भाव और कर्ता में लकार होते हैं। यहाँ भावशब्द का अर्थ क्रिया ही है।

जिस सकर्मक धातु का कर्म वाक्य में नहीं है,वह धातु अविवक्षित कर्म कहलाती है। अतः उस धातु से भी लकार भाव और कर्ता में होते हैं।

लकार का विधान कर्ता, कर्म में और कर्ता, भाव में सम्भव है। धातु से परे कब कर्ता में लकार विधान करना चाहिए अथवा कब कर्म में इत्यादि विवेक तो वक्ता के द्वारा करना चाहिए। वाक्यरचना कर्ता अपनी विवक्षा से ही किस अर्थ में लकार प्रयोग हो यह चिन्तन करता है। अतः विवक्षा ही यहाँ विनिगमना।

कर्तरि लकारः विधीयते इस वाक्य का अर्थ होता है कर्ता अर्थ में लकार विधान किया जाता है। यहाँ कर्तरे, कर्मे, भावे ये सप्तम्यन्त पद हैं। उनके अर्थ तो कर्ता अर्थ, कर्म अर्थ, भाव अर्थ यह होता है। इस प्रकार ही आगे वर्तमाने लट् यहाँ वर्तमान अर्थ में लट् इत्यादि समझना चाहिए।

सकर्मक और अकर्मक धातु

जिस धातु का कर्म सम्भव होता है वह धातु सकर्मक कहलाता है। जिसका कर्म सम्भव नहीं है वह धातु अकर्मक कहलाती है। धातु का फल और व्यापार ये दो अर्थ है। वहाँ व्यापार ही क्रिया है। यह व्यापार फलजनक होता है। अतः फलानुकूल व्यापार कहलाता है। व्यापार का आश्रय एक कारक होता है। फल का आश्रय भी एक कारक होता है। जिस धातु का फल तो एक कारक में है, व्यापार दूसरे कारक में है, वह धातु सकर्मक कहलाती है। जिस धातु का फल जिस कारक में है, उसमें ही व्यापार हो तो वह धातु अकर्मक कहलाती है।

जैसे तक्षा कुठारेण काष्ठं छिनत्ति। इस उदाहरण में कुठार का उद्यमन निपातनरूप व्यापार तक्षा करता है। तक्षन् के विना यह व्यापार नहीं होता है। अतः व्यापारः तक्षन् में है। व्यापार जायमान छेदनरूप फल तो काष्ठ में है। अतः व्यापार तक्षन् में, फल काष्ठ में यह फलव्यापार दोनों का आश्रय भिन्न हैं। अतः छिद् धातु सकर्मक है।

रामः तिष्ठति। यहाँ स्था धातु से गतिनिवृत्ति अर्थ है। गतिविराम फल है। और उसके अनुकूल व्यापार स्थितिरूप है। दोनों ही राम में ही है। अतः फल और व्यापार का आश्रय भिन्न नहीं अपितु राम एक ही है अतः स्थाधातु अकर्मक है।

अकर्मक सकर्मक धातु के विषय में कुछ प्रसिद्ध श्लोक हैं -

कर्तृ-कर्म-क्रिया-युक्तः प्रयोगः स्यात् सकर्मकः।
अकर्मकः कर्मशून्यः कर्मद्वन्द्वो द्विकर्मकः।।

क्रियापदं कर्तृपदेन युक्तं व्यपेक्षन्ते यत्र किमित्यपेक्षाम्।
सकर्मकं तं सुधियो वदन्ति शेषस्ततो धातुरकर्मकः।।

अकर्मकधातुगणः

लज्जा-सत्ता-स्थिति-जागरणं वृद्धि-क्षय-भय-जीवित मरणम्।
शयन-क्रीडा-रुचि-दीप्त्यर्थं धातुगणं तमकर्मकमाहुः।।

कारिका में उक्त अर्थों के वाचक धातु अकर्मक होते हैं।

लकार

ल् इस वर्ण के बाद माहेश्वरसूत्र क्रम से अ इ उ ऋ ए ओ ये छः वर्ण जोड़ने चाहिए। उसके बाद ट् यह वर्ण जोड़ने योग्य है। तब लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट् ये छः शब्द प्राप्त होते हैं। ये लकार कहलाते हैं। इनमें अन्तिम टकार हलन्त्यम् इस सूत्र से इत्संज्ञक होता है। अतः ये 'टित् लकार' भी कहलाते हैं।

ल् इस वर्ण के बाद माहेश्वरसूत्र क्रम से अ इ उ ऋ ये चार वर्ण जोड़ने चाहिए। तत्पश्चात् ङ् यह वर्ण जेड़ना चाहिए। तब लङ्, लिङ्, लुङ्, लृङ् ये चार शब्द प्राप्त होते हैं। ये लकार कहलाते हैं। इनमें अन्तिम ङकार हलन्त्यम् इस सूत्र से इत्संज्ञक होता है। अतः ये 'ङित् लकार' भी कहलाते हैं।

टित् छः, ङित् चार इस प्रकार दस लकार होते हैं। उनमें लेट् लकारः वेद में ही प्रयोग किया जाता है। इस पाठ्यक्रम में वैदिक प्रकरण नहीं है। अतः लेट् लकार के रूप प्रदर्शित नहीं किए जाते हैं। अतः नौ लकार शेष रहते हैं। वहाँ भी पुनः लिङ् लकार के विधिलिङ् आशीर्लिङ् ये दो भेद होते हैं। इस प्रकार मिलाकर दस लकार होते हैं।

वह ही यहाँ तालिका में प्रदर्शित करते हैं।

लकारः	अर्थः	विधायकं सूत्रम्
ल् + अ + ट् = लट्	वर्तमान	वर्तमाने लट्
ल् + इ + ट् = लिट्	अनद्यतनपरोक्षभूत	परोक्षे लिट्

भ्वादिप्रकरण में - भू धातु के लट् लकार में रूपसिद्धि-१

ल् + उ + ट् = लुट्	अनद्यतनभविष्यत	अनद्यतने लुट्
ल् + ऋ + ट् = लृट्	भविष्यत	लृट् शेषे च
ल् + ए + ट् = लेट्	वेदे में ही प्रयुक्त	लिङर्थे लेट्
ल् + ओ + ट् = लोट्	विध्याद्यर्थ में	लोट् च। आशिषि लिङ्लोटौ।
ल् + अ + ङ् = लङ्	अनद्यतनभूत काल में	अनद्यतने लङ्
ल् + इ + ङ् = लिङ्	विध्याद्यर्थ में	विधिनिमन्त्रणामत्रणा धीष्टसंप्रश्न प्रार्थनेषु लिङ्
ल् + इ + ङ् = लिङ्	आशीर्वादार्थ में	आशिषि लिङ्लोटौ
ल् + उ + ङ् + लुङ्	सामान्यभूत काल में	लुङ्
ल् + ऋ + ङ् + लृङ्	क्रियातिपत्ति में	लुङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ। भूते च।

लकारबोधिका कारिका

लट् वर्तमाने लेट् वेदे भूते लुङ्-लङ्-लिटस्तथा।
विध्याशिषास्तु लिङ्लोटौ लुट्-लृट्-लृङ् च भविष्यति।।

उदाहरण

पठ्-धातु **सकर्मक है** - रामः वेदं पठति यहाँ पठ्-धातु से लकार कर्ता में विहित है।

'रामेण वेदः पठ्यते' इस वाक्य में पठ् धातु से लकार कर्म में विहित है।

'रामः तिष्ठति' इस वाक्य में स्थाधातु **अकर्मक है।** उस धातु से लकार कर्ता में विहित है।

'रामेण स्थीयते' इस वाक्य में स्था धातु से लकार भाव में विहित है।

'रामः खादति' इस वाक्य में कर्म उल्लिखित नहीं है। अतः खाद् धातु यहाँ अविवक्षितकर्म है। यहाँ खाद् धातु से लकार कर्ता में विहित है।

'रामेण खाद्यते' इस वाक्य में कर्म का उल्लेख नहीं है। अतः खाद् धातु **अविक्षितकर्मक** है। अतः यहाँ खाद् धातु से लकार भाव में विहित है।

12.2 वर्तमाने लट्॥ (३.२.१२३)

सूत्रार्थ - वर्तमान क्रियावृत्ति धातु से लट् हो।

सूत्रव्याख्या - यह विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद है। वर्तमाने यह सप्तम्यन्त पद है। लट् यह प्रथमान्त पद है।

टिप्पणियाँ

धातोः यह अधिकृत है। प्रत्ययः (३.१.१), परश्च (३.१.२) दोनों सूत्र यहाँ अधिकृत है।यह सूत्र प्रत्ययाधिकार में पठित है। उस कारण लट् यह प्रत्यय है। धातोः यह पञ्चम्यन्त पद है। तस्मादित्युत्तरस्य इस परिभाषा के प्रभाव से और परश्च इस सूत्र के बल से लट् धातु से अव्यवहित पर विधान होता है। इस प्रकार सूत्रार्थ होता है - वर्तमान अर्थ में विद्यमान धातु से अव्यवहित पर लट् प्रत्यय होता है।

यहाँ यह ध्यान रखने योग्य है - जो भूतकाल नहीं है, जो भविष्यत्काल नहीं है वह वर्तमानकाल है। कोई भी क्रिया बहुत लघुव्यापारों का समुदाय होती है। अर्थात् एक ही क्रिया के अनेक अवयव सम्भव होते हैं। जिस क्रिया का प्रथम अवयव कर लिया गया है परंतु अंतिम अवयव अवशिष्ट है वह क्रिया वर्तमानकालिक क्रिया कहलाती है। 'इनिर्गुण ब्रह्मति'। यथा पाकक्रिया के अनेक अवयव है। तण्डुल शुद्ध करना, पात्र की स्थापना करना, अग्नि जलाना इत्यादि उनमें जो प्रथम अवयव कल्पित है वह यदि कर लिया गया है, किन्तु अन्तिम अवयव यथा अग्निनिर्वाप अथवा पात्र का अवनाम यह यदि अब तक नहीं किया गया है तो पाकक्रिया वर्तमानकालिकी क्रिया है।

धातु का अर्थ व्यापार और फल है यह कहा ही गया है। जिस धातु का अर्थ व्यापार अर्थात क्रिया वर्तमान काल में है वह धातु वर्तमान क्रियावृत्ति कहलाती है। वर्तमाने (काले) क्रियायाः वृत्तिः यस्य स वर्तमानक्रियावृत्तिः धातुः। यदि वर्तमान काल में क्रिया है यह प्रकट करने की विवक्षा है तो धातु से लट् विधान किया जाता है।।

इस प्रकार सूत्र का अर्थ होता है - वर्तमानक्रियावृत्तित्व विवक्षा में धातु से लट् होता है।

लट् इसके टकार का हलन्त्यम् (१.३.३) इस सूत्र से और अकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत् (1.3.2) इस सूत्र से इत्संज्ञा होती है। तस्य लोपः इस सूत्र से दोनों का लोप होता है। लशक्वतद्धिते (1.3.8) इस सूत्र से लकार की इत्-संज्ञा प्राप्त है। किन्तु लकार की भी यदि इत् संज्ञा हो तो तस्य लोपः इस सूत्र से लकार का लोप प्रवृत होगा। तब तो लट् इस समग्र का उच्चारण व्यर्थता को प्राप्त होगा। परन्तु पाणिनी मुनि का कोई भी उच्चारण व्यर्थ नहीं है। अतः उच्चारण सामर्थ्य से ल् की इत्संज्ञा नहीं होती है।

उदाहरणम् - पाणिनी मुनि प्रणीत धातुपाठ में भू यह आदि धातु है। उसका अर्थ सत्ता और उत्पत्ति है। सत्ता आत्मधारण और उसके अनुकूल व्यापार है। 'वर्षा भवति' यह उदाहरण है। जब वर्षा का अर्थात् वृष्टि का वर्षणरूप व्यापार वर्तमान काल में होता है, प्रवर्तित होता है, यह विवक्षा है तो भू धातु से लट् लकार विधान किया जाता है 'वर्तमाने लट्' इस सूत्र से। भूधातु अकर्मक है। अतः उससे परे को लकार कर्ता और भाव में होने के लिए योग्य है। तब किस अर्थ में लकार विधान करना चाहिए, यहाँ विवक्षा ही नियामक है। यहाँ दशगणी इस प्रकरण में सदा कर्ता में ही लकार विधान किया जाता है और प्रदर्शित किया जाता है। कर्म और भाव में विधान के लिए आगे भावकर्मप्रकरण है। अतः यहाँ भूधातु से लट् लकार कर्ता में विधान किया जाता है।

लट् इस लकार में अकार और टकार इत्संज्ञक है, यह कहा गया है। पाणिनी मुनि ने लट् यह सूत्र में उच्चारित किया है। अतः लट् उपदेश है। धातु से उत्तर लट् के योजनाकाल में ही अकार

और टकार का लोप करना चाहिए। उससे भू ल् यह स्थिति होती है। कभी भी भू लट् यह स्थिति प्रकट नहीं करना चाहिए।

कालादि विचार

काल के तीन विभाग होते हैं -वर्तमान काल, भविष्यत् काल और भूतकाल। भविष्यत्काल के अद्यतनभविष्यत्काल और अनद्यतनभविष्यत्काल ये दो प्रकार है। भूतकाल के भी अद्यतनभूतकाल और अनद्यतभूतकाल ये दो प्रकार है। सभी भविष्यत्कालिक क्रियाएं भूत अथवा वर्तमान में इन्द्रियगोचर नहीं होती हैं। अत: भविष्यत्कालिक क्रियाएं वर्तमान क्षण में परोक्ष ही होती है। भूतकालिक कुछ क्रियाएं वक्ता को इन्द्रियगोचर होती हैं। और कोई नहीं होती हैं। जिन क्रियाओं का वक्ता इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष होने से स्वयं अनुभव करता है, वे क्रियाएं प्रत्यक्ष होती हैं। जिनका नहीं करता है वे क्रियाएं परोक्ष होती है। अनद्यतनभूतकालिक परोक्ष क्रिया प्रकट करना हो तो उसकी वाचक धातु से लिट् लकार विधान किया जाता है। अनद्यतनभूतकालिक क्रिया प्रकट करने योग्य हो तो उसकी वाचक धातु से लङ् लकार प्रयोग किया जाता है। अतीत कालिक कोई भी क्रिया प्रकट करने योग्य हो तो उसकी वाचक धातु से लुङ् लकार विधान किया जाता है। यदि अद्यतनभविष्यत्कालिक क्रिया प्रकट करने योग्य हो तो लृट् लकार प्रयोग करना चाहिए। यदि अनद्यतनभविष्यत्कालिक क्रिया प्रकट करने योग्य हो तो उसकी वाचक धातु से लुट् लकार प्रयोग किया जाता है।

सभी लकारों के भी कालवाचक और प्रेरणादिवाचक ये दो भाग होते हैं। लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लङ्, लुङ् और लृङ् लकार कालवाचक हैं। लोट् और लिङ् ये दोनों लकारद प्रेरणादिवाचक है। वहाँ लट् वर्तमानकाल का वाचक है। लिट् लङ् और लुङ् भूतकाल के वाचक हैं। लुट् और लृट् ये भविष्यत्काल के वाचक है। लृङ् क्रिया की अनिष्पत्ति में प्रयोग किया जाता है भूत में और भविष्यत् काल में।

यह ही विभाग संक्षेप में नीचे तालिका में प्रदर्शित हैं-

<table>
<tr><th colspan="3">भूतकाल:</th><th>वर्तमान-काल:</th><th colspan="3">भविष्यत्-काल:</th></tr>
<tr><td>अनद्यतन-</td><td rowspan="3">गतरात्रि १२ बजे</td><td>अद्यतन-</td><td rowspan="3">लट्</td><td>अद्यतन-</td><td rowspan="3">आगामिरात्रि १२ बजे</td><td>अनद्यतन-</td></tr>
<tr><td>परोक्ष - लिट्</td><td>लुङ्</td><td>लृट्</td><td>लुट्</td></tr>
<tr><td>लङ्</td><td>सर्वभूते</td><td></td><td></td></tr>
</table>

लकारों का कब और किस अर्थ में प्रयोग हो यह इन दो उप् कारिकाओं में कहा गया है -

वर्तमाने परोक्षे श्वोभाविन्यर्थे भविष्यति।
विध्यादौ प्रार्थनादौ च क्रमाज्ज्ञेया लडादय:।।

ह्योभूते प्रेरणादौ च भूतमात्रे लङादयः।
सत्यां क्रियातिपत्तौ च भूते भाविनि लृङ् स्मृतः।।

इस प्रकार भू धातु से कर्तृ विवक्षा में वर्तमाने लट् इस सूत्र से लट् में अनुबन्धलोप होने पर भू-ल् यह स्थिति होती है। तब - (अग्रिम सूत्र में द्रष्टव्य है।)

पाठगत प्रश्न 12.1

1. लः कर्मणि चेति सूत्र में वाक्यद्वय कौन से है?
2. सकर्मक धातु का लक्षण क्या है?
3. अकर्मकधातु का लक्षण क्या है?
4. कितने लकार होते हैं?
5. कितने टित् लकार हैं?
6. कितने ङित् लकार हैं?
7. कौनसा लकार वेद में ही प्रयुक्त होता है?
8. कौन सी धातु वर्तमान क्रियावृत्ति कहलाती है?
9. धातुपाठ में प्रथम धातु कौन सी है?
10. जिस धातु का अर्थ व्यापार वर्तमान काल में है इस को प्रकट करने के लिए उस धातु से परे कौन सा लकार विधान किया जाता है। और किस सूत्र से?

12.3 तिप्तस्झि-सिपथस्थ-मिब्वसमस्-तातञ्झ-थासाथांध्वमिड्वहिमहिङ्।। (३.४.७८)

सूत्रार्थ - तिप्, तस्, झि, सिप्, थस्, थ, मिप्, वस, मस्, त, आताम्, झ, थास्, आथाम्, ध्वम्, इट्, वहि और महिङ् ये अट्ठारह लकार के स्थान पर आदेश हो।

सूत्रव्याख्या - यह सूत्र विधिसूत्र है। इस सूत्र में एक ही पद है तिप्-तस्-झि-सिप्-थस्-थ-मिप्-वस्-मस्-त-आताम्-झ-थास्-आथाम्-ध्वम्-इट्-वहि-महिङ् यह प्रथमान्त पद है। इस पद में १८ शब्द स्वरूप हैं। यहाँ समाहारद्वन्द्वसमास है। अतः एकवचन है। लस्य यह षष्ठ्यन्त पद अधिकृत है। यह स्थान षष्ठी है। अतः लकार के स्थान पर यह अर्थ प्राप्त होता है। अतः सूत्रार्थ होता है-तिप्, तस्, झि, सिप्, थस्, थ, मिप्, वस, मस्, त, आताम्, झ, थास्, आथाम्, ध्वम्, इट्, वहि और महिङ् ये अठ्ठारह लकार के स्थान पर आदेश हो। यह सूत्र प्रत्ययाधिकार में पढ़ा गया है। इस

कारण ये शब्दस्वरूप प्रत्यय संज्ञक होते हैं। स्थान पर जो विधीयमान है वह आदेश कहलाता है। अतः ये १८ आदेश हैं। और ये लकार के स्थान पर विधान किए जाते हैं। अतः ये लादेश कहलाते हैं। महिङ् इस अन्तिमप्रत्यय ङ् इसके साथ तिप् इस प्रथमप्रत्यय का ति यह उच्चारित होकर तिङ् यह प्रत्याहार होता है। वह सभी १८ प्रत्ययों का बोधक होता है। यह ही तिङ् अन्त में है जिससे वह तत् तिङन्त पद होता है।

उदाहरण - भू ल् यह स्थिति पूर्व में वर्णित है। यहाँ ल के स्थान पर १८ आदेश प्रकृतसूत्र से विधान किए जाते हैं। और वे धातु से बिना व्यवधान के ही रखने चाहिए। भू धातु से परे लकार के स्थान पर एक बार में एक ही आदेश निवेश करने में समर्थ हैं। एक ही समय पर १८ प्रत्यय और अव्यवहितपर यह सम्भव नहीं है। अतः एकसाथ १८ प्रत्यय प्रयोग करने योग्य नहीं हैं, परन्तु एक,एक पर्याय से प्रयोग कर सकते हैं। तब कौनसा प्रत्यय किस प्रयोजन के लिए प्रयोग करना चाहिए इस विवेक के लिए अग्रिम सूत्र आते हैं।

12.4 लः परस्मैपदम्॥ (१.४.९८)

सूत्रार्थ - लादेश परस्मैपदसंज्ञक हो।

सूत्रव्याख्या - यह संज्ञासूत्र है। इसमें दो पद हैं। लः (६/१), परस्मैपदम् (१/१)। लः यह सम्बन्ध के अनुयोगिविरह होने से स्थान षष्ठी है।उससे लस्य स्थाने यह प्राप्त होता है। स्थान में आदेश होते हैं। अतः आदेशाः इस पद का अध्याहार किया जाता है। सूत्रार्थ होता है - 'लादेश परस्मैपदसंज्ञक' होते हैं। अर्थात् लकार के स्थान पर तिप्तस्झि-सिपथस्थ-मिब्वस्मस्-तातञ्झ-थासाथांध्वम्-इड्वहिमहिङ्। (३.४.७८) इस सूत्र से प्राप्त १८ आदेश परस्मैपदसंज्ञा को प्राप्त करते हैं।

12.5 तङानावात्मनेपदम्॥ (१.४.९९

सूत्रार्थ - तङ् प्रत्याहार, शानच् और कानच् आत्मनेपदसंज्ञक हो।

सूत्रव्याख्या - यह संज्ञासूत्र है। इस सूत्र में दो पद है। तङानौ (१/२), आत्मनेपदम् (१/१)। लः परस्मैपदम् इस सूत्र से लः यह षष्ठ्येकवचनान्त पद अनुवर्तित होता है। लः यहाँ स्थान षष्ठी है। अतः लस्य स्थाने यह अर्थ प्राप्त होता है।

तङ् च आनः च तङानौ इति इतरेतरयोगद्वन्द्वसमासः। तङ् इति प्रत्याहारः। तिप्तस्झि-सिप्थस्थ-मिब्वस्मस्-तातञ्झ-थासाथांध्वम्-इड्वहिमहिङ्। (३.४.७८) इस सूत्र में तातञ्झ यहाँ त, आताम्, झ यह विच्छेद है। यहाँ त यह प्रत्यय है। वह महिङ् इस अन्तिमप्रत्यय के अन्त इत् ङकार के साथ उच्चारित हो तो तङ् यह प्रत्याहार निष्पन्न होता है। उसका अर्थ है - त, आताम्, झ, थास्, आथाम्, ध्वम्, इट्, वहि और महिङ् ये नौ प्रत्यय।

आनः इस पद में आन यह अंश है। तदात्मक जो प्रत्यय है वह आन इस शब्द से बोध्य है। व्याकरण में शानच्, कानच् और चानश् ये तीन प्रत्यय होते हैं। इनमें आन यह अंश है। वहाँ शानच्, कानच् ये दोनों ही धातु से विधान किए जाते हैं। चानश् तद्धितप्रत्यय है, अतः धातु से विधान नहीं किया

जाता है। वह ल के स्थान पर नहीं विधान किया जाता है। शानच् कानच् ये दोनों ही ल के स्थान पर विधान किए जाते हैं। अतः आन इससे शानच् और कानच् ये दोनों यहाँ ग्रहण किए जाते हैं। परन्तु सूत्र में आन यह कहा गया है। यहाँ प्रत्यय तो शानच् और कानच् है। आन इससे इन दोनों का ग्रहण कैसे हुआ। वहाँ कहा जाता है कि आन यह अनुबन्धरहित उच्चारण है। जब अनुबन्धरहित का उच्चारण किया जाता है तब अनुबन्धसहित का ग्रहण करना चाहिए। वैसे ही परिभाषा है - 'निरनुबन्धकग्रहणे सानुबन्धकस्य' इति।

सूत्रार्थ होता है - ल के स्थान पर होने वाला तङ् प्रत्याहार शानच् और कानचौ आत्मनेपदसंज्ञक हो। तिङ् प्रत्याहार में तङ् अन्तर्भूत है। तिङों की परस्मैपदसंज्ञा विहित ही है। उनमें से नौ तङों की इस प्रकृतसूत्र से आत्मनेपदसंज्ञा प्राप्त हुई। आकडारादेका संज्ञा इसके अधिकार में ये सूत्र हैं। अतः पूर्वसंज्ञा को बाधकर प्रकृत सूत्र से तङ् की आत्मनेपदसंज्ञा विधान होती है। और शेष होने से तिप्, तस्, झि, सिप्, थस्, थ, मिप्, वस्, मस् इन नौ की परस्मैपदसंज्ञा होती है। त, आताम्, झ, थास्, आथाम्, ध्वम्, इट्, वहि, महिङ् इन नौ और शानच् और कानच् इन दोनों की आत्मनेपद संज्ञा होती है।

जो जो संज्ञा वह वह फलवती होती है। अतः की गई आत्मनेपद आदि संज्ञाओं का फल क्या है इस निर्णय के लिए अग्रिम तीन सूत्र आते हैं।

पाठगत प्रश्न 12.2

1. लादेश कितने और कौन से हैं?
2. किनकी परस्मैपद संज्ञा होती है?
3. किनकी आत्मनेपद संज्ञा होती है?
4. परस्मैपद संज्ञा विधायक सूत्र कौन सा है?
5. आत्मनेपद संज्ञा विधायक सूत्र कौन सा है?
6. निरनुबन्धकग्रहणे सानुबन्धकस्य इस परिभाषा का अर्थ क्या है?

12.6 अनुदात्तङित आत्मनेपदम्॥ (१.३.१२)

सूत्रार्थ - अनुदात्त इत् और ङित् धातु से आत्मनेपद हो।

सूत्रव्याख्या - यह विधिसूत्र है। यह सूत्र आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्ययों का धातु से विधान करता है। इस सूत्र में दो पद है। अनुदात्तङितः आत्मनेपदम् यह सूत्रगत पदों का विच्छेद है। अनुदात्तङितः (५/१), आत्मनेपदम् (१/१)। भूवादयो धातवः इस सूत्र से धातवः यह पद अनुवर्तित होता है।उसका पञ्चम्यन्त रूप से विपरिणाम होता है।उससे धातोः यह प्राप्त होता है। अनुदात्तश्च ङ् च इति

अनुदात्तङौ यह इतरेतरयोगद्वन्द्वसमास है। अनुदात्तङौ इतौ यस्य सः अनुदात्तङित्। तस्य अनुदात्तङितः इति। **द्वन्द्वादौ द्वन्द्वमध्ये द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसंबध्यते** यह नियम है। अर्थात् द्वन्द्वसमास के आदि में, मध्य में अथवा अन्त में विद्यमान द्वन्द्वसमास का प्रत्येक अनङ्गभूत पद द्वन्द्वसमास में विद्यमान पदों से अभिसम्बन्धित रहता है, अन्वित होता है। इत् यह पद द्वन्द्वसमास का अवयव नहीं है, किन्तु द्वन्द्वसमास के अन्त में है। अतः उसका अनुदात्त और ङ् इन दोनों शब्दों से अभिसम्बन्ध अर्थात् अन्वय होता है। और अनुदात्तेत् यह और ङित् यह निष्पन्न होते हैं। ल के स्थान पर तिङ् विधान किया जाता है। आत्मनेपद तिङ् ही है। अतः लस्य यह षष्ठ्येकवचनान्त पद आक्षिप्त होता है। तब पदयोजना है - अनुदात्तेतः ङितः च धातोः लस्य आत्मनेपदम् इति। सूत्र का अर्थ होता है - अनुदात्तेत् और ङित् धातु से लकार के स्थान पर आत्मनेपद विधान होता है। अर्थात् जिस धातु का अनुदात्त अच् इत् है वह अनुदात्तेत्, जिस धातु का ङकार इत् है वह ङित्। इस प्रकार अनुदात्तेत् ङित् यदि धातु हो तो उससे परे के ल के स्थान पर आत्मनेपद नामक प्रत्यय आदेश रूप से विधान किए जाने चाहिए।

उदाहरण - एधँ वृद्धौ। कमुँ कान्तौ। यतीँ प्रयत्ने इत्यादि अनुदात्तेत् धातुएं हैं। शीङ् स्वप्ने इत्यादि ङित् धातुएं हैं। अनुदात्तेत्त्वम् ङित्त्वम् यह इस प्रकार के आत्मनेपदविधान के धातु में विद्यमान निमित्त हैं। इस प्रकार की धातुओं से आत्मनेपदनामक प्रत्यय विधान किए जाने चाहिए।

12.7 स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले॥ (१.३.७२)

सूत्रार्थ - स्वरितेत् और ञित् धातु से आत्मनेपद हो, कर्तृगामी क्रियाफल होने पर।

सूत्रव्याख्या - यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से आत्मनेपद विधान किया जाता है। इस सूत्र में तीन पद है। स्वरितञितः (५/१), कर्त्रभिप्राये और क्रियाफले ये दो पद सप्तम्यन्त है।

अनुदात्तङित आत्मनेपदम् इस सूत्र से आत्मनेपद यह पद अनुवर्तित होता है। भूवादयो धातवः इस सूत्र से धातवः यह पद अनुवर्तित होता है। उसका पञ्चम्यन्त रूप से विपरिणाम होता है। उससे धातोः यह प्राप्त होता है। स्वरितः च ञ् च इति स्वरितञौ यह इतरेतरयोगद्वन्द्वसमास है। स्वरितञौ इतौ यस्य स स्वरितञित् इति बहुव्रीहिसमास है। तस्य स्वरितञितः इति। **द्वन्द्वादौ द्वन्द्वमध्ये द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसंबध्यते** यह नियम है।अर्थात् द्वन्द्वसमास के आदि में, मध्य में अथवा अन्त में विद्यमान द्वन्द्वसमास का प्रत्येक अनङ्गभूत पद द्वन्द्वसमास में विद्यमान पदों से अभिसम्बन्धित रहता है, अन्वित होता है। इत् यह पद द्वन्द्वसमास का अवयव नहीं है, किन्तु द्वन्द्वसमास के अन्त में है। अतः उसका स्वरित और ञ् इन दोनों शब्दों से अभिसम्बन्ध अर्थात् अन्वय होता है। इस प्रकार स्वरितेत् यह और ञित् यह निष्पन्न होते हैं।

कर्तारं अभिप्रैति (गच्छति) इति कर्त्रभिप्रायम् (फलम्)। तस्मिन् कर्त्रभिप्राये। क्रियायाः फलं क्रियाफलम्। तस्मिन् क्रियाफले यह षष्ठीतत्पुरुष समास है। पदयोजना होती है - स्वरितेतः ञितः धातोः आत्मनेपदं भवति कर्त्रभिप्राये क्रियाफले। क्रिया के फल को कर्ता प्राप्त करता है तो इस प्रकार की धातु से आत्मनेपद विधान करना चाहिए। यहाँ क्रिया का व्यापार और फल ये दो अर्थ ही कह गये हैं। परन्तु यह फल यहाँ अभिप्रेत नहीं है। क्योकिं इस फल का आश्रय कर्म यह

टिप्पणियाँ

कहा जाता है। यदि यह फल कर्ता को जाता है तो कर्ता की कर्मसंज्ञापत्ति है। अत: जिस प्रयोजन को उद्देश्य कर क्रिया आरम्भ की जाती है, वह फल ही यहाँ फलपद से ग्रहण करना चाहिए। यथा 'स्वर्गादिलाभाय याग: आरभ्यते'। परन्तु पुरोहित तो दक्षिणा लाभ के लिए याग करता है। यजमान का स्वर्ग फल है। पुरोहित का दक्षिणा फल है। यहाँ स्वर्ग ही फल फलपद से ग्रहण करने योग्य है। यहाँ स्वर्ग फल यदि यज्ञकर्ता को ही प्राप्त होता है तो यह कर्त्रभिप्राय क्रियाफल है। इस प्रकार होने से यज् धातु से आत्मनेपद का विधान होता है।

ल के स्थान पर तिङ् विधान किया जाता है। आत्मनेपद तिङ् ही है। अत: लस्य यह षष्ठ्येकवचनान्त पद आक्षिप्त किया जाता है। सूत्र का अर्थ होता है - स्वरितेत् और ञित् धातु से ल के स्थान पर आत्मनेपद विधान किया जाता है, कर्तृगामी क्रियाफल होने पर अर्थात् जिस धातु का स्वरित अच् इत् है वह स्वरितेत्, जिस धातु का ञकार इत् है वह ञित्। इस प्रकार स्वरितेत् अथवा ञित् यदि धातु हो तो उससे परे ल के स्थान पर आत्मनेपद नामक प्रत्यय आदेश रूप से विधान करने चाहिए। यदि क्रिया का फल कर्ता प्राप्त करता है।

उदाहरण - डुपचँष्स् पाके, यजँ देवपूजासंगतिकरणदानेषु इत्यादि स्वरितेत् धातुएं हैं। डुकृञ् करणे णीञ् प्रापणे इत्यादि ञित् धातुएं हैं। यजँ यहाँ अँकार अनुनासिक है। अत: उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से इत्संज्ञक होता है। और वह अँकार स्वरित भी है। अत: यज् धातु स्वरितेत् है। इस प्रकार ही अन्यत्र भी है।इस प्रकार के आत्मनेपदविधान के धातु में विद्यमान निमित्त हैं। इस प्रकार की धातुओं से आत्मनेपदनामक प्रत्यय विधान किए जाने चाहिए।

12.8 शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्॥ (१.३.७८)

सूत्रार्थ - आत्मनेपदनिमित्तहीन धातु से कर्ता में परस्मैपद हो।

सूत्रव्याख्या - यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से परस्मैपद की विधि की जाती है। इसमें तीन पद हैं। शेषात् कर्तरि परस्मैपदम् यह सूत्रगत पदों का विच्छेद है। शेषात् (५/१), कर्तरि (७/१), परस्मैपदम् (१/१)। कह गये से अन्य शेष है। क्या क्या कहा गया है। आत्मनेपदप्रत्यय के विधान के निमित्त कहे गये हैं। अनुदात्तङित आत्मनेपदम् (१.३.१२) इस सूत्र से आरम्भ करके विभाषोपपदेन प्रतीयमाने (१.३.७७) इस सूत्र तक आत्मनेपद प्रत्ययविधान के बहुत निमित्त कहे गये हैं। वे निमित्त जिस धातु से नहीं हैं वह धातु आत्मनेपद निमित्त से हीन है। वह ही शेष है। इस प्रकार आत्मनेपद निमित्त हीन धातु से यहाँ परस्मैपदसंज्ञक तिङ् विधान किया जाता है। परस्मैपद तिङ् ही है। अत: लस्य यह षष्ठ्येकवचनान्त पद आक्षिप्त होता है। और इस प्रकार की आत्मनेपदनिमित्तहीन धातुओं से ल के स्थान पर कर्ता अर्थ में परस्मैपद का विधान प्रकृत सूत्र करता है। सूत्र का अर्थ होता है - आत्मनेपदनिमित्तहीन धातु से परे ल के स्थान पर कर्ता में परस्मैपद हो।

उदाहरण - भू इस धातु में आत्मनेपद का कोई भी निमित्त नहीं है। अत: भू धातु आत्मनेपद निमित्तहीन है। अत: शेष है। अतएव भू धातु से परे ल के स्थान पर परस्मैपद कर्ता अर्थ में विधान किया जाता है।

यहाँ धातु से परे ल के स्थान पर ९ परस्मैपदसंज्ञक आदेश प्रकृतसूत्र से विधान किए जाते हैं। और वे अव्यवहित परे ही रखने योग्य हैं। धातु से पर ल के स्थान पर एक बार में एक ही आदेश रख सकते है। एककाल में ९ प्रत्यय और अव्यवहितपर यह तो सम्भव नहीं है। अतः एकसाथ ९ प्रत्यय प्रयोग नहीं कर सकते हैं। परन्तु एक एक पर्याय से प्रयोग कर सकते है। तब कौन सा प्रत्यय किस प्रयोजन के लिए प्रयोग करना चाहिए इस विवेक के लिए अग्रिम सूत्र प्रस्तुत हैं।

12.9 तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः॥ (१.४.१००)

सूत्रार्थ - तिङ् के आत्मनेपद और परस्मैपद के तीन त्रिक् क्रम से प्रथम, मध्यम,उत्तम संज्ञक हो।

सूत्रव्याख्या - यह संज्ञासूत्र है। इस सूत्र से प्रथम, मध्यम, उत्तम यह तीन संज्ञाएं विधान की जाती हैं। यहाँ सूत्र में चार पद हैं। तिङः त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः यह सूत्रगत पदों का विच्छेद है। तिङः (६/१), त्रीणि (१/३), त्रीणि (१/३), प्रथममध्यमोत्तमाः (१/३)। लः परस्मैपदम् इस सूत्र से परस्मैपदम् यह प्रथमान्त पद अनुवर्तित है। और षष्ठ्यन्त रूप में विपरिणाम होता है। तङानावात्मनेपदम् इस सूत्र से आत्मनेपदम् यह पद अनुवर्तित होता है। और षष्ठ्यन्त रूप में विपरिणाम होता है। प्रथमः च मध्यमः च उत्तमः चेति प्रथममध्यमोत्तमाः यह इतरेतरयोगद्वन्द्वसमास है। तब पदयोजना होती है - तिङः परस्मैपदस्य आत्मनेपदस्य त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः इति।

परस्मैपद के तीन प्रत्ययों का एक दल होता है, इस क्रम से तीन दल होते हैं। प्रथम, मध्यम, उत्तम ये तीन संज्ञाएं हैं। अतः जिनकी संज्ञा करने योग्य हैं, वे तीन हैं और संज्ञाएं भी तीन हैं। अतः 'यथासंख्यमनुदेशः समानाम्' इस परिभाषा से प्रथमदल की प्रथम संज्ञा। द्वितीयदल की मध्यम संज्ञा। तृतीयदल की उत्तम संज्ञा। और उसी प्रकार तिप्, तस्, झि इसकी प्रथम संज्ञा। सिप्, थस्, थ इसकी मध्यम संज्ञा। मिप् वस् मस् इस दल की उत्तम संज्ञा।

आत्मनेपद का भी तीन प्रत्ययों का एक दल होता है, इस क्रम से तीन दल होते हैं। प्रथम, मध्यम, उत्तम ये तीन संज्ञाएं हैं। अतः जिनकी संज्ञा करने योग्य है, वे तीन हैं, और संज्ञाएं भी तीन हैं। अतः यथासंख्यमनुदेशः समानाम् इस परिभाषा से प्रथमदल की प्रथम संज्ञा। द्वितीयदल की मध्यम संज्ञा। तृतीयदल की उत्तम संज्ञा। और उसी प्रकार- आताम् झ इस दल की प्रथम संज्ञा। थास्, आथाम्, ध्वम्, इ दल की मध्यम संज्ञा। इट् वहि महिङ् इस दल की उत्तमः संज्ञा।

नीचे संज्ञाविभाग प्रदर्शित किया गया है।

दलम्	परस्मैपदम्		
प्रथमदलम्	तिप्	तस्	झि
द्वितीयदलम्	सिप्	थस्	थ
तृतीयदलम्	मिप्	वस्	मस्

आत्मनेपदम्			संज्ञा
त	आताम्	झ	प्रथमः
थास्	आथाम्	ध्वम्	मध्यमः
इट्	वहि	महिङ्	उत्तमः

12.10 तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः॥ (१.४.१०१)

सूत्रार्थ - प्रथम, मध्यम, उत्तमसंज्ञक तिङ् के तीन तीन वचन प्रत्येक एकवचन, द्विवचन,बहुवचन संज्ञक होते हैं।

सूत्रव्याख्या - षड्विध पाणिनीय सूत्रों में यह संज्ञासूत्र है। इस सूत्र से प्रथम, मध्यम, उत्तम प्रत्ययों की प्रत्येक एकवचन, द्विवचन, बहुवचन संज्ञाएं विधान की जाती है। इस सूत्र में तीन पद है। तानि (१/३), एकवचनद्विवचनबहुवचनानि (१/३) एकवचनम्, द्विवचनम्, बहुवचनञ्चेति एकवचन द्विवचन बहुवचनानि यह इतरेतरयोगद्वन्द्वसमास है। और एकशः यह अव्यय है। एकशः इसका अर्थ है- प्रत्येक। तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः इस सूत्र से तिङः यह षष्ठ्येकवचनान्त पद और त्रीणि त्रीणि ये प्रथमाबहुवचनान्त दो पद अनुवर्तित है। सूत्रस्थ तानि इस शब्द से तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः इस पूर्वसूत्र में स्थित त्रीणि त्रीणि का अर्थ ग्रहण किया जाता है। उन तीन तीन दलों को मिलाकर छः दल हैं। प्रत्येक दल में विद्यमान तीनों घटकों में एक एक की क्रमशः एकवचनम्, द्विवचन और बहुवचन संज्ञाएं होती हैं।

इस प्रकार यह सार है -

परस्मैपद का प्रथम दल है तिप् तस् झि। इनमें तिप् इसकी एकवचन, तस् इसकी द्विवचनम् और झि इसकी बहुवचन संज्ञा होती है।

तिङः त्रीणि त्रीणि यहाँ त्रीणि इस पद के दो बार ग्रहण से परस्मैपद तथा आत्मनेपद तिङ् के दोनों पदों का ग्रहण होता है। इसी प्रकार आगे भी।

किसकी कौनसी संज्ञा होती है यह नीचे प्रदर्शित किया गया है।

	परस्मैपदम्			आत्मनेपदम्			संज्ञा
	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	
प्रथमदलम्	तिप्	तस्	झि	त	आताम्	झ	प्रथमः
द्वितीयदलम्	सिप्	थस्	थ	थास्	आथाम्	ध्वम्	मध्यमः
तृतीयदलम्	मिप्	वस्	मस्	इट्	वहि	महिङ्	उत्तमः

पाठगत प्रश्न 12.3

1. अनुदात्तेत् धातु से कौन सा तिङ् विधान किया जाता है?
2. ङित् धातु से कौन सा तिङ् विधान किया जाता है?
3. आत्मनेपदविधान के निमित्त भ्वादिप्रकरण में कौन से उल्लेखित है?

4. 'द्वन्द्वादौ द्वन्द्वमध्ये द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसंबध्यते' इसका अर्थ लिखिए।
5. आत्मनेपद किसके स्थान पर विधान किया जाता है?
6. आत्मनेपदविधान के निमित कौनसे है भ्वादिप्रकरण में?
7. ञित् धातु से आत्मनेपद कब विधान किया जाता है?
8. अनुदात्तेत् धातु का उदाहरण क्या है?
9. शेषात् कर्तरि परस्मैपदम् यहाँ शेषपदार्थ क्या है?
10. प्रथम संज्ञा विधायक सूत्र कौन सा है?
11. तिङों की एकवचनादि संज्ञा किस सूत्र से होती है?

12.11 युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः॥ (१.४.१०४)

सूत्रार्थ - लकारवाच्यकारकवाची युष्मद् उपपद में रहते प्रयुज्यमान और अप्रयुज्यमान होने पर मध्यम हो।

सूत्रव्याख्या - यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से मध्यम विधान किया जाता है। इस सूत्र में छः पद हैं। युष्मदि (७/१), उपपदे (७/१), समानाधिकरणे (७/१) स्थानिनि (७/१), अपि (अव्ययम्), मध्यमः (१/१)। उप समीपे उच्चारितं पदम् उपपदम्। तस्मिन् उपपदे, समीप उच्चारित होने पर यह उसका अर्थ है। समानम् अधिकरणम् (वाच्यम्) यस्य तत् समानाधिकरणम्। तस्मिन् समानाधिकरणे। समानार्थक होने पर यह उसका अर्थ है। स्थान प्रसङ्ग है। सोऽस्ति अस्य इति स्थानी, तस्मिन् स्थानिनि। और इसका अप्रयुज्यमान होने पर यह अर्थ है। सूत्र में विद्यमान अपि पद से प्रयुज्यमान होने पर यह अर्थ प्राप्त होता है। लः परस्मैपदम् इस सूत्र से लः यह षष्ठ्यन्त पद अनुवर्तित होता है। अतः सूत्रार्थ होता है - लकारसमानार्थक समीपोच्चारित प्रयुज्यमान अथवा अप्रयुज्यमान युष्मद् पर में होने पर लकार के स्थान पर मध्यम होता है।

यहाँ यह स्पष्ट करने योग्य है -

लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः इस सूत्र से धातु से लकार विहित होता है। और क्रमशः वर्तमाने लट् इस सूत्र से लट् विहित होता है। तब भू ल् यह स्थिति उत्पन्न होती है। यहाँ लकार विवक्षा से कर्ता में विहित है यह भी शेषात् कर्तरि परस्मैपदम् इससे स्पष्ट है। लकार के स्थान पर जो तिङ् विधेय है वह भी लकार के समान कर्ता में ही होगा। अतः यह स्पष्ट है कि तिङ् कर्ता में विधान होगा। अतः लकार का (तिङ् का) वाच्य कारक कर्तृकारक है, यह स्पष्ट है। भू धातु का प्रयोग जिस वाक्य में होगा उसमें यदि युष्मद् इस सर्वनाम का प्रयोग कर्तृकारक में अर्थात् युष्मद् का वाच्य कर्ता हो तब भू धातु से मध्यमसंज्ञक तिङ् विधान करने योग्य है, यह अर्थ है।

इस प्रकार वाक्य में प्रयुक्त युष्मद् का वाच्य कारक,और धातु से पर विहित लकार का वाच्य कारक यदि समान हो तो धातु से पर मध्यमसंज्ञक प्रत्यय विधान करना चाहिए यह सूत्र का अर्थ है।

टिप्पणियाँ

युष्मदः वाच्यमेव लस्य वाच्यं इसका अर्थ युष्मद् का जो अधिकरण है (अर्थ, वाच्य) वह ही अधिकरण लकार का भी है। अर्थात् युष्मद् लकार का समानाधिकरण है। उन दोनों का सामानाधिकरण्य है। उन दोनों का वाच्य व कारक समान है। दोनों का अर्थ समान है। अतः युष्मद् व लकारसमानार्थक है। तब मध्यमसंज्ञक सिप्, थस्, थ ये परस्मैपद से, थास्, आथाम्, ध्वम् ये आत्मेनपद से विधान करना चाहिए यह अर्थ है। और यदि युष्मद् का साक्षात् उल्लेख वाक्यों में हो अथवा साक्षात् उल्लेख न हो, परन्तु उसका अर्थ प्रतीत होता है, तब भी मध्यम विधान किया जाता है।

उदाहरण - त्वं खादसि।

सूत्रार्थसमन्वय - यथा - त्वम् खाद् ल् यह वाक्य करने योग्य है। यहाँ लकार कर्ता में विवक्षित है। युष्मद् के रूप त्वम् इसका अर्थ भी कर्ता में ही विवक्षित है। युष्मद् और लकार का सामानाधिकरण्य है। अतः लकार के स्थान पर मध्यमसंज्ञक प्रत्यय विधान करना चाहिए। तब त्वं खादसि यह वाक्य होगा।

और (युष्मद्) खाद् ल् यह वाक्य करने योग्य है। यहाँ लकार कर्म में विवक्षित है। युष्मद् का रूप प्रयोग करने योग्य है। उसका अर्थ भी कर्ता ही विवक्षित है। दोनों का अर्थ भिन्न है। इस प्रकार युष्मद् और लकार का सामानाधिकरण्य नहीं है। अतः ल के स्थान पर मध्यमसंज्ञक प्रत्यय का विधान नहीं किया जा सकता।

12.12 अस्मद्युत्तमः॥ (१.४.१०६)

सूत्रार्थ - अस्मद् और लकार समानाधिकरण हो तो अस्मद् प्रयुज्यमान अथवा अप्रयुज्यमान होने पर उत्तम हो।

सूत्रव्याख्या - यह विधिसूत्र है। इस सूत्र से उत्तम का विधान किया जाता है।इस सूत्र में दो पद है। अस्मदि (७/१), उत्तमः (१/१)। युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः इस सूत्र से उपपदे (७/१), समानाधिकरणे (७/१) स्थानिनि (७/१), अपि (अव्ययम्) ये सभी पद अनुवर्तित किए गए हैं। उप समीपे उच्चारितं पदम् उपपदम्। तस्मिन् उपपदे, समीप उच्चारित होने पर यह उसका अर्थ है। समानम् अधिकरणम् (वाच्यम्) यस्य तत् समानाधिकरणम्। तस्मिन् समानाधिकरणे। समानार्थक होने पर यह उसका अर्थ है। स्थान प्रसङ्ग है। सोऽस्ति अस्य इति स्थानी, तस्मिन् स्थानिनि। और इसका अप्रयुज्यमान होने पर यह अर्थ है। सूत्र में विद्यमान अपि पद से प्रयुज्यमान होने पर यह अर्थ प्राप्त होता है। लः परस्मैपदम् इस सूत्र से लः यह षष्ठ्यन्त पद अनुवर्तित होता है। अतः सूत्रार्थ होता है - लकारसमानार्थक समीपोच्चारित प्रयुज्यमान अथवा अप्रयुज्यमान होने पर अस्मद् में लकार के स्थान पर उत्तम होता है।

सूत्रार्थ का स्पष्टीकरण

लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः इस सूत्र से धातु से लकार विहित होता है। और क्रमशः वर्तमाने लट् इस सूत्र से लट् विहित होता है। तब भू ल् यह स्थिति उत्पन्न होती है। यहाँ लकार विवक्षा

से कर्ता में विहित है यह भी शेषात् कर्तरि परस्मैपदम् इससे स्पष्ट है। लकार के स्थान पर जो तिङ् विधेय है वह भी लकार के समान कर्ता में ही होगा। अतः यह स्पष्ट है कि तिङ् कर्ता में विधान होगा। अतः ल का (तिङ् का) वाच्य कारक कर्तृकारक है, यह स्पष्ट है। भू धातु का प्रयोग जिस वाक्य में होगा उसमें यदि अस्मद् इस सर्वनाम का प्रयोग कर्तृकारक में अर्थात् अस्मद् का वाच्य कर्ता हो। तब भू धातु से उत्तमसंज्ञक तिङ् विधान करना चाहिए।

इस प्रकार वाक्य में प्रयुक्त अस्मद् का वाच्य कारक, और धातु से परे विहित लकार का वाच्य कारक यदि समान हो तो धातु से परे उत्तमसंज्ञक प्रत्यय विधान करना चाहिए यह सूत्र का अर्थ है। अस्मदः वाच्यमेव लस्य वाच्यं इसका अर्थ अस्मद् का जो अधिकरण है (अर्थ, वाच्य) वह ही अधिकरण ल का भी है। अर्थात् अस्मद् ल का समानाधिकरण है। उन दोनों का सामानाधिकरण्य है। उन दोनों का वाच्य व कारक समान है। दोनों का अर्थ समान है। अतः अस्मद् व लकारसमानार्थक है। तब उत्तमसंज्ञक मिप्, वस्, मस् ये परस्मैपद से, इङ्, वहि महिङ् ये आत्मेनपद से विधान करना चाहिए यह अर्थ है। और यदि अस्मद् का साक्षात् उल्लेख वाक्यों में हो अथवा साक्षात् उल्लेख न हो, परन्तु उसका अर्थ प्रतीत होता है, तब भी उत्तम विधान किया जाता है।

उदाहरण - अहं खादामि।

सूत्रार्थसमन्वय - यथा - अहम् खाद् ल् यह वाक्य करने योग्य है। यहाँ लकार कर्ता में विवक्षित यह। अस्मद् के रूप अहम् इसका अर्थ भी कर्ता ही विवक्षित यह। अस्मद् का और ल का सामानाधिकरण्य है। अतः ल के स्थान पर उत्तमसंज्ञक प्रत्यय विधान करना चाहिए। तब अहं खादामि यह वाक्य होगा।

12.13 शेषे प्रथमः॥ (१.४.१०७)

सूत्रार्थ - मध्यम और उत्तम का अविषय होने पर धातु से प्रथम हो।

सूत्रव्याख्या - छः प्रकार के पाणिनीय सूत्रों में से यह विधिसूत्र है। इस सूत्र में दो पद है। वहाँ शेषे यह सप्तम्येकवचनान्त पद है। और प्रथमः यह च प्रथमैकवचनान्त पद है। उक्त से अन्य शेष है। मध्यम और उत्तम का विषय उक्त है। अतः उक्त मध्यम और उत्तम के विषय से भिन्न शेष कहलाता है।

वस्तुतः क्या उक्त है। और क्या शेष है। युष्मद् और लकार का सामानाधिकरण्य हो तो धातु से मध्यम विधान किए जाने योग्य है। अस्मद् और लकार का सामानाधिकरण्य हो तो धातु से उत्तम विधान किए जाने योग्य है, यह हमने कहा। तत्पश्चात् अन्य इसका अर्थ इस प्रकार है कि उक्त दोनों सामानाधिकरण्य नहीं हो तो धातु से प्रथमसंज्ञक विधान किए जाने योग्य है। अतः सूत्रार्थ होता है - मध्यम और उत्तम का अविषय होने पर धातु से प्रथम हो।

जहाँ एक ही वाक्य में युष्मद् और लकार का सामानाधिकरण्य और अस्मद् एवं लकार का सामानाधिकरण्य ये दोनों हो, तब विप्रतिषेधे परं कार्यम् इस परिभाषा से अस्मद्युत्तमः इस सूत्र से उत्तम ही विधान करने योग्य है। उदाहरण - अहं च त्वं च गच्छावः।

टिप्पणियाँ

जहाँ एक ही वाक्य में युष्मद् और लकार का सामानाधिकरण्य तथा उस कारक में ही दूसरा भी पद प्रयुक्त हो तो भी 'युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः' इस सूत्र से मध्यम ही विधान किए जाने योग्य है। कहाँ, तो यह कहा जाता है - 'प्रथमः शेषे सति विधीयते'। इस वाक्य में तो युष्मद् का विषय है। अतः यद्यपि शेषे प्रथमः यह सूत्र परसूत्र है। फिर भी शेषत्व का अभाव होने से प्रवर्तित नहीं होता है। उदाहरण - त्वं च स च गच्छथः।

जहाँ एक ही वाक्य में अस्मद् और लकार का सामानाधिकरण्य तथा उस कारक में ही दूसरा भी पद प्रयुक्त हो तो भी अस्मद्युत्तमः इस सूत्र से उत्तम ही विधान किए जाने योग्य है। कहा तो यह जाता है - प्रथमः शेषे सति विधीयते। इस वाक्य में तो अस्मद् का विषय है। अतः यद्यपि शेषे प्रथमः यह सूत्र परसूत्र है। फिर भी शेषत्व का अभाव होने से प्रवर्तित नहीं होता है। उदाहरण - अहं च स च गच्छावः।

यहाँ यह संग्रहित है

लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः इस सूत्र से धातु से परे तीनों अर्थों में लकार होता है। वहाँ विवक्षा ही नियामक है। तब विवक्षा होने से कर्ता में लकार विहित है। और उससे धातु का अर्थ व्यापार वर्तमान काल में है यह विवक्षित है। अतः वर्तमाने लट् इस सूत्र से धातु से लट् विहित होता है। तब भू ल् यह स्थिति प्राप्त हुई। लकार के स्थान पर तिप्-तस्-झि-सिप्-थस्-थ-मिप्-वस्-मस्-त-आताम्-झ-थास्-आथाम्-ध्वम्-इट्-वहि-महिङ् ये अठ्ठारह आदेश प्राप्त हैं। और वे अव्यवहितपर ही रखने चाहिए। भू धातु से परे लकार के स्थान पर एक बार में एक ही आदेश कर सकते है। एक काल १८ प्रत्यय और अव्यवहितपर यह सम्भव नहीं है। अतः एक साथ १८ प्रत्यय प्रयोग नहीं कर सकते हैं, परन्तु एक एक पर्याय से प्रयोग कर सकते है। तब कौनसा प्रत्यय किस प्रयोजन के लिए प्रयोग करना चाहिए इस विवेक के लिए लः परस्मैपदम् इस सूत्र से अठ्ठारह प्रत्ययों की परस्मैपदसंज्ञा की गई। तत्पश्चात् तङानावात्मनेपदम् इस सूत्र से तङ् प्रत्याहार, शानच् और कानच् की आत्मनेपदसंज्ञा की गई। इस प्रकार १८ प्रत्ययों में से आदि नौ की परस्मैपदसंज्ञा तथा अन्त्य नौ तङाम् की आत्मनेपदसंज्ञा की गई।

वहाँ भी परस्मैपदसंज्ञा और आत्मनेपदसंज्ञा का क्या फल है इस निर्णय के लिए अनुदात्तङित आत्मनेपदम् यह और स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले यह दो सूत्र रखे गए। उससे जिस धातु से आत्मनेपदनिमित्त है उस धातु से आत्मनेपदसंज्ञक नौ प्रत्यय युगपत् अथवा पर्याय से किए गए। और जिस धातु से आत्मनेपदनिमित्त नहीं है, उस प्रकार की धातु से शेषात् कर्तरि परस्मैपदम् इस सूत्र से परस्मैपदसंज्ञक ९ प्रत्यय युगपत् अथवा पर्याय से प्राप्त किए गए।

धातु से परे लकार के स्थान पर ९ परस्मैसंज्ञक आदेश प्रसक्त हैं। और वे अव्यवहितपर ही रखने चाहिए। धातु से परे लकार के स्थान पर एक बार में एक ही आदेश कर सकते है। एक काल ९ प्रत्यय और अव्यवहितपर यह सम्भव नहीं है। अतः एक साथ ९ प्रत्यय प्रयोग नहीं कर सकते

हैं, परन्तु एक एक पर्याय से प्रयोग कर सकते है। तब कौनसा प्रत्यय किस प्रयोजन के लिए प्रयोग करना चाहिए इस विवेक के लिए यहाँ भी संज्ञा करी गई है।

'तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमा:' इस सूत्र से तिङ् के आत्मनेपद और परस्मैपद के तीनों त्रिकों की क्रम से प्रथम, मध्यम, उत्तम यह संज्ञा विहित है। इस प्रकार जिनकी प्रथमादिसंज्ञा हुई, उनमें प्रत्येक एक एक की 'तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकश:' इस सूत्र से एकवचन, द्विवचन, बहुवचन ये संज्ञाएं विहित की गई।

यहाँ तक प्रत्येक प्रत्यय कोई संज्ञा प्राप्त कर चुका है। जैसे तिप् इसकी परस्मैपदम, प्रथम, एकवचन ये तीन संज्ञाएं हुई। इस प्रकार अन्य प्रत्ययों की भी।

फिर भी किस प्रयोजन के लिए यह संज्ञाएं आई हैं और इनका उपयोग कैसे हैं इस विवेक के लिए सूत्रों की रचना की गई।

वहाँ यदि एक वाक्य में युष्मद् और लकार का सामानाधिकरण्य है तो धातु से मध्यम विधान करना चाहिए, यह 'युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यम:' इस सूत्र के द्वारा व्यवस्था की गई।

वहाँ यदि एक वाक्य में अस्मद् और लकार का सामानाधिकरण्य है तो धातु से उत्तम विधान करना चाहिए, यह अस्मद्युत्तम इस सूत्र के द्वारा व्यवस्था की गई।

यदि मध्यम और उत्तम का अविषय होता है तो धातु से शेषे प्रथम: इस सूत्र से प्रथम विहित होता है।

फिर भी मध्यमसंज्ञक सिप् थस् थ ये तीन हैं। अब यह स्पष्ट है कि कब मध्यम का प्रयोग करना चाहिए। परन्तु यह नहीं स्पष्ट है कि सिप्-थस्-थ इन तीनों में से किसका प्रयोग करना चाहिए। 'तद्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने' यह और 'बहुषु बहुवचनम्' यह दोनों सूत्रों से यह आता है कि लकार का अर्थ जो कारक है वह यदि एक हो तो एकवचनसंज्ञक सिप् प्रयोग करना चाहिए। यदि लकार का अर्थ जो कारक है उसका यदि द्वित्व हो अर्थात् कारकद्वय हो तो द्विवचनसंज्ञक थस् यह प्रत्यय प्रयोग करना चाहिए। यदि लकार का अर्थ जो कारक है उसका यदि बहुत्व हो अर्थात् दो से अधिक कारक हो तो बहुवचनसंज्ञक थ यह प्रत्यय प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार अन्यत्र भी।

इस प्रकार कर्ता में लकार विवक्षित होने पर भू ल् इस स्थिति में लकार के स्थान पर तिबादि अष्टादश प्रत्ययों के प्राप्त होने पर लकार का वाच्य कर्ता एक और वह युष्मद् और अस्मद् का वाच्य नहीं हो तो यह विवक्षा होने पर लकार के स्थान पर एकवचनसंज्ञक प्रथम विधान करना चाहिए। तिपं में पकार की हलन्त्यम् इस सूत्र से इत्संज्ञा होने पर और तस्य लोप: इससे लोप होने पर भू ति यह स्थिति होती है। तब -

धातु से विहित प्रत्ययों की सार्वधातुक और आर्धधातुक ये दो संज्ञाएं होती है। अष्टाध्यायी में सार्वधातुकसंज्ञाविधायक और आर्धधातुकसंज्ञाविधायक सूत्र एक स्थान पर ही रखे गए हैं। उनका ज्ञान एक समय में हो इसलिए वे सूत्र भी यहाँ ही दिये गए हैं।

पाठगत प्रश्न 12.4

1. कब मध्यम विधान किया जाता है?
2. कब उत्तम विधान किया जाता है?
3. कब प्रथम विधान किया जाता है?
4. युष्मद्युपपदे इत्यादि सूत्र में समानाधिकरणपदार्थ क्या है?
5. शेषे प्रथमः यहाँ शेष क्या है?

ध्यान देने योग्य

भू धातु से लट् में भवति यह रूप होता है। उसकी सम्पूर्ण सिद्धि के लिए बहुत सूत्रों की आवश्यकता है। केवल भवति इस रूप की सिद्धि के लिए ही दो पाठ है। अतः यहाँ पाठ विभक्त है। परन्तु विषय क्रमशः आगे चलता है। अतः यहाँ पाठसार नहीं है, पाठान्त प्रश्न नहीं हैं और उत्तर नहीं हैं। वह सभी अग्रिम पाठ के अन्त में द्रष्टव्य है।

॥ इति द्वादशोः पाठः॥